कोयल, पपीहे और चातक की दुनिया

नरेन्द्र देवांगन

ककू जाति के पक्षी प्रायः सारे संसार में पाए जाते हैं, पर एक से नहीं। विभिन्न पक्षी विशेषज्ञों ने पक्षी-शरीर रचना विज्ञान के आधार पर कुछ पक्षियों को 'ककू' नाम से पुकारा है।

हमारे देश में पाए जाने वाले ककुओं में सबसे अधिक लोकप्रिय कोयल है जो कौवे के रंग और कबूतर के आकार की होती है। कोयल की कूटनीति से सभी परिचित हैं। कोयल की काली करतूत वर्षा काल के प्रारंभ में प्रगट होती है, जब मादा कोयल चुपके से अपना अंडा कौए के घोंसले में रख आती है और उसके अंडे को चोंच से उठाकर दूर फेंक आती है और इस तरह अपने शिशु की परवरिश दूसरों से करवा लेती है। कोयल स्वयं न तो घोंसला बनाती है और न बच्चे पालती है, पर उसे अक्सर अपनी धूर्तता की काफी कीमत चुकानी पड़ती है। अगर संयोगवश कौआ दंपति अपने घोंसले पर आ जाए और कोयल को अंडा रखते देख ले तो उसकी खैर नहीं। वह भागती है और कौए उसका पीछा करते हैं। उसे चोंच से मार-मारकर अधमरा कर देते हैं। वह ज़मीन पर गिर पड़ती है और जान गंवा बैठती है।

अक्सर वर्षा ऋतु के आरंभ में जब दोनों के अंडे देने का समय होता है, आप बड़ी-बड़ी अमराइयों में इस तरह की अनेक मरी हुई कोयलें पाएंगे। कोयल के बच्चे कौए द्वारा पाले जाने के कारण ही कोयल को संस्कृत में 'परभृत' कहा है। यजुर्वेद में इसे 'अन्यवाय' भी कहा गया है - दूसरे के घोंसले में अपना अंडा रखने वाली।

दूसरे की आंखों में धूल झोंककर उनसे अपने बच्चों का पालन-पोषण कराने के कारण कोयल को साहित्य में भर्त्सना भी काफी सुननी पड़ी है। वैसे यही काम अन्य पक्षी भी करते हैं परंतु उनकी शिकायत में किसी ने एक शब्द भी नहीं कहा है। और तो और, सीधी-सादी चरखी के घोंसले में चुपके से अपने अंडे रख आने वाले पपीहे की तारीफ के पुल बांधे गए हैं और उसके आत्म-सम्मान की प्रशंसा की गई है।

कोयल और पपीहा दोनों उस जाति के पक्षी हैं जिसे

वैज्ञानिक शब्दावली में ककू कहते हैं। इनकी दर्ज़नों किस्में हैं और ये सभी दूसरों से ही अपने अंडे सेवाते तथा बच्चों का पालन-पोषण करवाते हैं। इन गायक पक्षियों को घोंसला बनाना, अंडे सेना, बच्चों का लालन-पालन करना भार प्रतीत होता है।

ककू जाति के सभी पक्षी, चाहे वे युरोप के हों या हमारे देश के, कभी घोंसला नहीं बनाते, औरों के घोंसले में ही अपने अंडे देते हैं। विलायती ककू छोटे कद के होते हैं। अतः वे रॉबिन आदि छोटे पक्षियों के घोंसलों में अंडे देते हैं। हमारे यहां ककू पक्षियों में कोयल और पपीहा जैसे बड़े पक्षी भी हैं, चातक और बऊकथा कहे जैसे छोटे कद के भी। ये अलग-अलग पक्षियों के घोंसले चुनते हैं, जिनका कद इनसे मिलता-जुलता हो तथा जिनके अंडे-बच्चों के साथ इनके अंडे-बच्चों का रंग तथा आकार-प्रकार मेल खाता हो। कौए और कोयल के बच्चे एक जैसे लगते हैं, वैसे ही चरखी और पपीहे के।

पपीहे की बोली से मिलती-जुलती बोली एक और पक्षी की होती है, जो देखने में अत्याकर्षक है। इसे बंगला आदि कई भाषाओं में चातक कहा गया है। कद में यह पपीहे से काफी छोटा होता है। शरीर ऊपर से गाढ़ा काला, नीचे सफेद, सिर पर तुर्रा ये इसके पहचान के चिंह हैं। वर्षा काल में यह भी पी-पी... की रट लगाता है, पर अत्यंत क्षीण स्वर में। वर्षा ऋतु आते ही चातक दिखने लगता है। यह भी अपने अंडे चरखी अथवा कस्तूर के घोंसले में ही रख आता है। यही हाल अन्य छोटे ककू पक्षियों का भी है, जो हमारे बाग-बगीचों में कुछ इस तरह छिपे रहते हैं कि उन्हें देखना अत्यंत कठिन होता है। इनके अस्तित्व का पता हमें केवल इनकी मधुर वाणी से ही लगता है। दरअसल ये सारे छोटे ककू शर्मीले स्वभाव के होते हैं। वृक्ष की डालों पर ये पत्तियों की ओट में बैठे रहते हैं और वहीं से गाते या सीटी बजाते हैं। ये युरोप के हों या हमारे देश के, इनका स्वभाव एक जैसा है।

कहते हैं सारी दुनिया में किसी न किसी मौसम में ककू पाए जाते हैं। हमारे यहां इनकी 6 उपजातियां देखने में आती हैं। सबसे बड़ा ककू 13 इंच का होता है। इसका रंग भी पपीहे की भांति बहुत कुछ शिकरे से मिलता है। यानी बदन के ऊपर का सारा हिस्सा गहरे राख के रंग का होता है, नीचे का सफेद, जिस पर छाती से नीचे तक पतली काली धारियां बनी होती हैं। पूंछ लंबी और अनुक्रमिक होती है, रंग कालापन लिए हुए बादामी। मादा के रंग में बादामीपन ज़्यादा होता है। ये मौसम के अनुसार स्थान परिवर्तन करते रहते हैं। जापान से लेकर हिमालय तथा मध्यप्रदेश से लेकर रांची की पहाड़ियों तक में ये पाए जाते हैं। ये पहाड़ी ककू के नाम से विख्यात हैं। जाड़ों में ये हिमालय से उतरकर देश के समतल क्षेत्रों में चले आते हैं। कुछ श्रीलंका तक की सैर कर आते हैं। इनकी एक किस्म असम की पहाड़ियों में भी पाई जाती है जो उपर्युक्त ककुओं से देखने में कुछ भिन्न होती है।

सबसे छोटा वह है, जिसे बंगाल में 'बऊकथा कहे' के नाम से पुकारते हैं। इसकी बोली में एक अपूर्व माधुर्य है तथा जब ग्रीष्म की दोपहरी में अथवा शाम को सूर्यास्त की बेला में यह किसी वृक्ष से कूकना या सीटी बजाना आरंभ करता है, तो एक अजीब रोमांटिक वातावरण पैदा कर देता है। यदा-कदा आधी रात में भी इसकी करुण सीटी सुनाई पड़ती है। जी चाहता है कि सुनते ही रहें। बोलने का इसका ढंग कुछ ऐसा है कि यह समझना कठिन हो जाता है कि आवाज़ किस ओर से आ रही है। बोलते समय यह अपने सिर को हमेशा घुमाता रहता है, कभी एक दिशा में स्थिर नहीं रखता, और इस तरह भ्रम में डाल देता है। कभी यह एक वृक्ष पर अधिक समय तक नहीं रहता, किन्तु वृक्ष परिवर्तन कुछ ऐसे ढंग से करता है कि हम उसे उड़ते हुए देख नहीं पाते, केवल आवाज़ से जान पाते हैं कि इसने स्थान परिवर्तन कर लिया है।

इसकी लंबाई करीब 9 इंच होती है। अन्य ककू पक्षियों की तरह इसकी शक्ल-सूरत भी शिकरे से बहुत कुछ मिलती है। नर का रंग गहरा राख मिश्रित भूरा होता है, मादा का ऊपरी तथा गले का हिस्सा अखरोटी, निचला हिस्सा सफेद, जिस पर काली धारियां बनी होती हैं। नर के डैने नुकीले तथा पूंछ के पर क्रमिक होते हैं। मादा अपने अंडे गोरैया के कद के कस्तूर अथवा चरखी

नामक छोटे पक्षियों के घोंसले में रख देती है। ऐसा करने में यह काफी निर्भीकता से काम लेती है। 'चोरी और सीनाजोरी' की जीती-जागती मिसाल है यह। जब अंडे देने का समय आता है, यह सीधे उक्त पक्षियों में से किसी के घोंसले में चली जाती है और उसमें बैठकर अंडे देती है, काफी बढ़ी तादाद में। कभी-कभी बीस-बीस अंडे एक साथ। यदि घोंसला छोटा हुआ, तो यह उसके किनारे पर बैठ जाती है, दुम को पीछे रखकर अंडे घोंसले के भीतर गिरा देती है। धाय-माता इन अंडों को बड़े शौक से सेती है और बच्चों के बाहर निकलने पर उन्हें दाना चुगाकर उसी प्यार से उनका लालन-पालन करती है जैसे अपने बच्चों का। परंतु पल रहे बच्चे कुछ और ही स्वभाव के होते हैं। वे इसका कोई एहसान नहीं मानते। जब भी मौका पाते हैं, अपनी गड्ढेदार पीठ पर धाय-माता के अंडे या बच्चे को बैठाकर नीचे ढुलका देते हैं, जिससे वे नीचे गिरकर नष्ट हो जाते हैं। पर इन एहसान फरामोशों को इसका कोई मलाल नहीं होता। प्रकृति को तो देखिए, वह इनकी इस साज़िश में शामिल हो जाती है। आरंभ में इनकी पीठ पर एक गड्ढा बना देती है, जिससे ये समर्थ होते हैं इस दुष्कर्म को करने में। पर जब इसकी ज़रूरत नहीं रहती तो पीठ का यह गड्ढा अपने आप ही भर जाता है।

मज़े की बात तो यह है कि धाय-माता के अलावा अपनी वास्तविक माता से भी इन्हें बाकायदा चुग्गा मिलता रहता है। इस तरह दो-दो माताओं से भोजन पाकर ये काफी बलिष्ठ हो जाते हैं। इनके गले में अद्‌भुत साज़ और सोज़ का उद्‌भव होता है। धाय-माता इनकी धोखेबाज़ी से अनभिज्ञ रहती है। पर निकल आने पर ये कद में धाय-माता से बड़े हो जाते हैं, अतः अक्सर उसे इनकी पीठ पर चढ़कर इन्हें दाना चुगाना पड़ जाता है, पर ये इसका एहसान कहां मानते हैं।

इसी प्रकार और भी पांच प्रकार के ककू यहां पाए जाते हैं। इनकी मादाएं किसी न किसी दूसरे पक्षी के घोंसले में अंडे देती हैं। सबके तरीके कमोबेश एक जैसे हैं और सभी एक मौसम में दर्ज़नों अंडे देती हैं, ज़्यादातर एक ही जाति के पक्षियों के घोंसलों में। इसका मुख्य कारण यह है कि इन छोटे ककुओं का कोई पक्का जोड़ा नहीं होता। अक्सर मादा दो-तीन या इससे अधिक नरों के साथ जोड़ा बांधती है। नर घोंसला ढूंढने का काम मादा के ज़िम्मे छोड़कर रफू चक्कर हो जाता है। फिर किसी और के साथ जोड़ा बांधता है। बड़े पक्षियों के अंडे गोलाकार पर काफी चिपटे हुए होते हैं। रंग कई प्रकार के होते हैं - सफेद, गुलाबी-बादामी, जिन पर नारंगी अथवा हल्के बैंगनी रंग के छींटें और धारियां रहती हैं। किसी-किसी में काले धब्बे भी पाए जाते हैं। कभी-कभी नीले रंग के अंडे भी देखे गए हैं। अंडा संग्राहकों को ये अंडे बड़े काम के प्रतीत होते हैं। छोटे ककू - बऊकथा कहे के अंडे का एक छोर दूसरे छोर से पतला होता है, रंग में सफेद होता है जिसके ऊपर हल्के लाल रंग के चित्ते पड़े होते हैं जो दर्ज़ी तथा फुदकी पक्षियों के अंडों से काफी मिलते हैं।

हमारे साहित्य में, जहां कोयल और पपीहे को इतना प्रमुख स्थान दिया गया है, अफसोस कि वहां रूमानी वातावरण पैदा करने वाले छोटे ककू उपेक्षित बने रहे हैं। भारतीय साहित्य में चातक और पपीहा ये दोनों शब्द पर्यायवाची माने गए हैं, पर वस्तुतः ये दो पक्षी हैं जिनमें पारस्परिक समानताएं भी हैं, असमानताएं भी। रूप-रंग में इनके काफी भेद हैं पर बोली में समानता है। पपीहा कबूतर के कद का, रंग-रूप में शिकरे (एक शिकारी पक्षी) से हूबहू मिलता हुआ, स्लेटी भूरे रंग का पक्षी है, जिसके उड़ने का ढंग भी वही है जो शिकरे का है।

चातक मैना से कुछ छोटा, लंबी पूंछ वाला पक्षी है, जिसके बदन का ऊपरी हिस्सा गाढ़ा, चमकीला काला तथा निचला सफेद होता है। पांव पर बाज जैसे सफेद घने बाल होते हैं। सिर पर बुलबुल की तरह एक काला तुर्रा होता है। देखने में यह काफी आकर्षक है। ये दोनों ही मेघ से पानी की याचना करते हैं अर्थात वर्षाकाल में आकाश में बादल मंडराने लगते हैं तो जहां पपीहे गला फाड़-फाड़कर 'पी-पी...' की रट लगाते हैं, वहीं चातक बड़ी धीमी आवाज़ में कह उठता है 'पिउ-पिउ...'।

पपीहा वृक्षों पर रहने वाला पक्षी है, ज़मीन पर शायद

ही कभी उतरता हो। जब मस्ती में आता है, तब वृक्ष के शीर्ष भाग पर बैठकर ज़ोरों से बोलता रहता है; अक्सर रातों में भी, खासकर चांदनी रात में। चांदनी रात में तो इसके तमाम रात बोलने के कारण ही अंग्रेज़ी में इसे मस्तिष्क ज्वर पक्षी (ब्रेन फीवर बर्ड) कहा गया है। तमाम ग्रीष्म और वर्षाकाल यह करुण स्वर में पी-पी... की रट लगाकर काट देता है। वर्षा का वास्तविक अंत स्वाति नक्षत्र के व्यतीत होने पर ही होता है और तभी इसका बोलना भी बंद होता है। यही कारण है इस कहावत का कि पपीहे अथवा चातक की प्यास स्वाति जल से ही मिटती है।

चातक उन पक्षियों में है, जो बसंत नहीं, वर्षाकाल में अपना मुंह खोलता है। मानसूनी हवा का बहना शुरू हुआ नहीं कि चातक आ धमके। कुछ अफ्रीका की ओर से, कुछ पहाड़ों से। लगता है ये रातों-रात आ पहुंचते हैं। चातक पपीहा नहीं है, जो कभी न तो झाड़ियों पर आकर बैठता है और न बड़े वृक्षों से उतरकर ज़मीन पर पांव धरता है। अधिकांशतः वह वृक्ष के शीर्ष भाग पर बैठा हुआ आकाश के बादलों की ओर देखता तथा पी-पी... की तीव्र ध्वनि से सारे वातावरण को गुंजायमान करता है। ऊपर आकाश में उठने की प्रवृत्ति भी चातक में ही पाई जाती है, पपीहे में नहीं। इसी तरह पर्वतों पर भी चातक के होने का उल्लेख मिलता है। पपीहे इसके ठीक विपरीत, पहाड़ों पर नहीं होते, बल्कि भारत में बंगाल से लेकर राजस्थान तक के क्षेत्रों में ही पाए जाते हैं। और ये एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर भले ही उड़कर जाएं, उड़ते हुए आकाश में परिभ्रमण कदापि नहीं करते। ***(स्रोत फीचर्स)***

इस अंक के चित्र निम्नलिखित स्थानों से लिए गए हैं -

page no. 02 - http://www.physicsmasterclasses.org/exercises/keyhole/it/theory/main-5.html

page no. 04 - http://www.zerohedge.com/news/presenting-warren-archimedes-buffetts-amazing-24-hour-monster-bank-america-due-diligence-sessio

page no. 06 - http://en.wikipedia.org/wiki/Roulette

page no. 07 - http://chandanlog.wordpress.com/2006/09/30/stereoscopic-hard-disks/

page no. 12 - http://www.nrc-cnrc.gc.ca/eng/dimensions/issue6/periodic_table.html

page no. 15 - http://www.eoearth.org/article/Actions_to_Reduce_the_Health_Impacts_of_Air_Pollution

page no. 20 - http://www.johanacavalcanti.com/blog/wp-content/uploads/2010/01/robot-264x300.jpg

page no. 24 - http://geology.csupomona.edu/drjessey/class/Gsc101/pangea.gif

page no. 29 - http://lhsvirtualzoo.wikispaces.com/Medicinal+Leech

page no. 30 - http://www.freefoto.com/images/04/23/04_23_93---Microwave-Communication-Tower_web.jpg

page no. 32 - http://www.hoax-slayer.com/images/north-pole-moon2.jpg

page no. 37 - http://www.flickr.com/photos/ravinder_rajasthani/3661866551/
http://flickrhivemind.net/Tags/koyal/Interestin
http://iseeebirds.blogspot.in/2009_11_01_archive.html